फोटो: स्टेट ऑफ इंडियास हेल्थ

अब बच्चे स्कूल जाते हैं

प्रभाकर पोड़ापाटी

दो साल पहले हमने होशंगाबाद के केसला विकास खण्ड में बच्चों के लिए काम शुरू किया। हमें आश्चर्य हुआ कि 5 वर्ष से 15 वर्ष के 50 प्रतिशत बच्चे या तो स्कूल से निकाल दिए गए थे या कभी स्कूल गए ही नहीं थे। और वे बच्चे भी जिनका नाम स्कूल में लिखा था नियमित रूप से स्कूल नहीं आ रहे थे। पालकों से संपर्क करने पर ज्ञात हुआ कि चूंकि वहां कोई नियमित स्कूल है ही नहीं अत: वे अपने बच्चों को कहां भेजें? उधर शिक्षकों से संपर्क किया, हालांकि वे कठिनाई से ही मिले। बातचीत से ऐसा महसूस हुआ कि बच्चों को स्कूल भेजने की ज़िम्मेवारी पालकों पर डालकर वे अपनी ज़िम्मेवारी से साफ बच रहे थे। ऐसा लगा हमारी सारी व्यवस्था ही भ्रष्ट है। चूंकि स्कूल नियमित रूप से नहीं खुल रहे थे ऐसी स्थिति में पालक अपने बच्चों को स्कूल जाने से अक्सर रोक लेते थे और इसके लिए उन्हें कोई अफसोस नहीं था। कक्षा में छात्रों की

पर्याप्त उपस्थिति न होने से पढ़ाई पर उसका असर होता है तथा पढ़ाने में शिक्षक की अरुचि उत्पन्न हो जाती है। और इसी तरह चलता रहता है। हमने सोचा इस कुचक्र को तोड़ने का प्रयास किया जाए। यहां सबसे बड़ी ज़रूरत एक शिक्षा संस्कृति को विकसित करने की थी। एक ऐसी स्थिति निर्मित करनी जहां न केवल शिक्षक वरन् पालकों और बच्चों सहित पूरा समाज शिक्षा के महत्व को आत्मसात कर ले; तभी हम 'सभी के लिए शिक्षा' के नारे को यथार्थ रूप दे सकेंगे ज़्यादा बच्चों को पढ़ना जारी रखने के लिए रोक पाएंगे। और गुणात्मक दृष्टि से शिक्षा को प्रभावित कर पाएंगे।

सबसे पहले हमने 5 वर्ष से 15 वर्ष तक के ऐसे बच्चों की पहचान की जो या तो स्कूल जाते ही नहीं थे या स्कूल से निकाल लिए गए थे। ये सर्वेक्षण हमने केसला ग्राम पंचायत में सम्मिलित पांच गांवों में किया।

उसके बाद हमने मई-जून 1997 में एक केम्प लगाया। पूरे ग्रामीण समुदाय के साथ कई बार बैठकें करने के पश्चात तथा पालकों और बच्चों की पहल पर 82 बच्चों ने केम्प के लिए अपना नाम दर्ज करवाया। स्कूल नहीं जाने वाले बच्चों का छोटा-सा हिस्सा भर थे ये बच्चे। केम्प का उद्देश्य बच्चों को स्कूल जाने के लिए प्रेरित करना था तथा पढ़ाई के प्रति उनकी रुचि जागृत करना था। साथ ही साथ 'बड़े बच्चों' की उनकी उम्र के हिसाब से कक्षा निर्धारित कर, उस कक्षा में जाने हेतु मानसिक रूप से तैयार करना था। बच्चों को उनके घर से बाहर निकालना ज़रूरी था क्योंकि –

अ. इससे शिक्षा का मूल्य स्थापित होता है; कि अगर पढ़ाना हो तो बच्चों को अन्य ज़िम्मेदारियों से छुटकारा देना होगा।

ब. दो महिने के इस पठन-पाठन के सघन किन्तु उन्मुक्त वातावरण में ढेर सारे बच्चों के – जो कभी स्कूल नहीं गए थे या जो स्कूल से निकाल लिए गए थे – मन में यह भावना बिठाना कि शिक्षा उनके लिए भी संभव है।

स. शिक्षकों के लिए यह एक प्रशिक्षण के समान था बल्कि उससे भी बढ़कर ऐसा अनुभव जो दृढ़ता प्रदान करता है तथा साथ-साथ जीने की भावना को विकसित करता है। इस सामूहिकता से जो ताकत मिलती है उसकी बदौलत वे बाद में अलग-अलग गांवों में अकेले भी काम कर पाते हैं।

द. बच्चों की शिक्षा -दीक्षा में पालकों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना। इतना तो हो ही कि स्कूली दिनों में बच्चों पर पारिवारिक तथा

कार्य संबंधी कम-से-कम ज़िम्मेदारी हो।

केम्प के चलते-चलते चार दिनों तक हमने पढ़ाई-लिखाई की कोई बात नहीं की। इन दिनों हम सिर्फ खेलते रहे, नाचते-गाते रहे, और बच्चों की मदद करते रहे ताकि बच्चे खुद को इस नए माहौल में ढाल सकें। और हमने अनुभव किया कि बच्चे उन्मुक्त वातावरण में लीन थे।

यहां न तो ढोरों के पीछे भागना था, न छोटे भाई-बहनों की देख-भाल का झंझट, न ही पानी लेकर आना था और न ही यहां अनर्गल चिल्ला-चोट करने वाले घर के बड़े थे। इनमें से ज़्यादातर बच्चों के लिए रोज़ नहाना, कपड़े बदलना, दिन में तीन बार भोजन करना आदि अनुभव भी एकदम नए थे। यहां वे अपना ग्रुप बनाने, दोस्त ढूंढने जिनके साथ वे खेल सकें, खाने-सोने आदि में व्यस्त थे। और यह सब लगभग दो माह चला।

हम यहां शिक्षकों द्वारा अपनाए गए विभिन्न तरीकों की चर्चा नहीं करेंगे जिनसे बच्चों में रुचि जगाई गई और बच्चों को उनके स्तर के लिए ज़रूरी ज्ञान दिया गया। हम यहां यह इंगित करना चाहते हैं कि बच्चों ने इस प्रशिक्षण को लेकर कैसी प्रतिक्रिया व्यक्त की। वे खुद भोजन, कक्षा व्यवस्था तथा उस दिन पढ़ाए जाने वाले विषय की योजनाएं बनाने में लग जाते; अपनी योजना को कार्यरूप में परिणित करने के लिए सहज ही तैयार हो जाते थे। असल में यहां उनकी राय को महत्व दिया जा रहा था। उन्हें लग रहा था कि उन्हें एक व्यक्ति के रूप में जाना जा रहा है, जिसकी राय का सम्मान है और समूह में एक महत्वपूर्ण स्थान है।

और कैम्प के बाद

कैम्प के बाद हमें दो तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

एक तो स्कूलों में इतने सारे बच्चों के लिए जगह ही नहीं थी जो अब स्कूल जाना चाहते थे। यह समस्या विशेष रूप से दो पड़ोसी गांवों में आई जहां दोनों गांवों के लिए एक ही स्कूल था। गांववालों ने दोनों गांवों के लिए अलग-अलग स्कूल की मांग उठाई। स्थानीय समुदाय की दो-तीन बार बैठक हुई जिसके फलस्वरूप पंचायत ने एक पुरानी जर्जर बिल्डिंग को रिपेयर किया तथा शासन द्वारा नियुक्त अध्यापकों को पढ़ाने के लिए कहा गया। जब शाला की इमारत जर्जर थी, उन दिनों शिक्षक छात्रों की कम उपस्थिति या शाला भवन में स्थानाभाव जैसे बहाने बनाकर शाला में नियमित रूप से आना टाल जाते थे; लेकिन अब जबकि पर्याप्त बच्चे पढ़ने आ रहे थे तथा दोनों स्कूल भवन

तैयार थे, कोई कारण नहीं रह गया था कि दोनों स्कूल नियमित न चलें। परन्तु कक्षाओं में समान्तर शिक्षक (संस्था के कार्यकर्ता) मौजूद होने पर ही बच्चे पढ़ने आ रहे थे क्योंकि गर्मी के कैम्प में बच्चों की समान्तर शिक्षकों से काफी घनिष्टता हो गई थी। और तो और वे इन शिक्षकों को पसंद भी करने लगे थे। लेकिन अभी भी वे शासकीय शिक्षकों से डरते थे जो कभी उनकी पिटाई किया करते थे। कुछ दिनों बाद बच्चों को लगने लगा कि स्थितियां बदल चुकी हैं। आज दोनों स्कूल चल रहे हैं और बच्चे खुश हैं।

पहले जहां केवल 15-20 बच्चे इन दोनों स्कूलों में शिक्षारत थे अब 120 बच्चे इन स्कूलों में पढ़ रहे हैं।

सबसे महत्वपूर्ण बात इस प्रशिक्षण के दौरान सामने आई वह थी छात्रों तथा शिक्षकों के बीच परस्पर संबंध। हमने अध्यापकों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया था कि वे प्रत्येक छात्र की भावना की कद्र करें तथा यह देखें कि छात्र क्या चाहता है। यदि एक बार छात्र शिक्षक से डरना बंद कर देता है तथा दोनों के बीच एक दोस्ताना रिश्ता कायम हो जाता है तो छात्र/छात्रा के लिए सीखना आनंददायक और आसान हो जाता है। शिक्षक की निकटता और उपस्थिति बहुत महत्वपूर्ण होती है, चाहे वह कक्षा में बैठकर हो या स्कूल के बाद खेल के मैदान में। इससे शिक्षक एवं छात्र एक दूसरे के निकट आ जाते हैं। तथा छात्र के संपूर्ण विकास में इसका बहुत योगदान रहता है।

दूसरा महत्वपूर्ण पहलू यह है कि शासकीय शिक्षकों के साथ भी एक रिश्ता बनाए रखना चाहिए क्योंकि समान्तर शिक्षकों के रहते नियमित शिक्षक प्रायः यह समझने लगते हैं कि उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। एक तरह से वे निश्चिंत हो जाते हैं तथा सारा काम समान्तर शिक्षकों पर डाल देते हैं।

यद्यपि उनमें से किसी को भी बाहरी हस्तक्षेप से कोई आपत्ति न थी, एक उपयुक्त व्यवस्था खड़ी करनी होगी क्योंकि हम वास्तव में शासकीय दायित्वों को अपने ऊपर नहीं ओढ़ना चाहते। कुछ ऐसे शिक्षक भी थे जिन्होंने हमारे तौर तरीके सीखने का प्रयास किया तथा बच्चों को पढाने में उसका भरपूर उपयोग किया। उन्होंने स्वीकार किया कि उन्हें कभी इस तरह का प्रशिक्षण नहीं दिया गया। कई शिक्षक नियमित रूप से स्कूल न आने पर या बच्चों के साथ मार-पिटाई करने पर ग्लानि महसूस करते हैं।

अंत में हम यही कह सकते हैं कि यह समुदाय ही है जो नियमित स्कूल चलने की गारंटी दे सकता है। लेकिन

जब हमने सबसे पहले लोगों से संपर्क किया था तो उनके बहुत से प्रश्न थे – 'बच्चों को शिक्षित करने (स्कूल भेजने) की आवश्यकता ही क्या है जबकि वो काम करके दो पैसे से घर की मदद कर रहे हैं? क्या आप दसवीं कक्षा के बाद नौकरी की गारंटी दे सकते हैं?' या ऐसे ही कुछ और सवाल। आश्चर्य की बात यह है कि लगभग सभी पालकों ने पूछा – 'स्कूल कहां है जहां बच्चों को पढ़ने भेजें? हम बच्चों को स्कूल क्यों भेजें – मारे-पीटे जाने के लिए?'

शिक्षकों द्वारा बच्चों को मारे -पीटे जाने के अलावा बच्चों द्वारा स्कूल छोड़ने का एक मुख्य कारण यह भी है कि उन्हें कक्षा दूसरी या तीसरी में फेल कर दिया जाता है। हालांकि कक्षा चौथी तक बच्चों को फेल नहीं करने का नियम है लेकिन ऐसे कई मामले देखने में आए जहां बच्चे कक्षा दूसरी या तीसरी में दो से अधिक बार फेल हुए। इससे पालकों की इस धारणा को बल मिला कि स्कूल उनके बच्चों को पढ़ाने में अक्षम है और वे अपने बच्चों को स्कूल से निकालने लगे। स्कूल

फोटो: अनिल शाह, प्रोब रिपोर्ट से साभार

न जाने वाले बच्चे स्कूल में पढ़ रहे बच्चों पर एक दबाव की तरह कार्य करते हैं (उन्हें भी बाहर खींचने वाले बल की तरह); साथ ही बच्चों के नियमित रूप से स्कूल न जाने को संगत ठहराते हैं।

इस अनियमित उपस्थिति से स्वाभाविक है कि पढ़ाई भी प्रभावित होती है। यदि कोई बच्चा 10 या 15 दिन स्कूल नहीं जाता है तो वह स्कूल नहीं जाने वाले बच्चों से अपनी तुलना करता है और उसे कोई अपराध बोध नहीं सताता।

यदि कोई बच्चा स्कूल से भागना सीख जाए या पालक इस या उस कारण के चलते उसे स्कूल जाने से रोकने लगे तो अंत में उसका स्कूल जाना हमेशा के लिए छूट जाता है।

यह काफी महत्वपूर्ण है कि पालक पूरी गम्भीरता के साथ बच्चों को स्कूल भेजें। रोज़ बच्चों को स्कूल के लिए तैयार करते हुए यह देखना कि क्या बच्चे ने साफ कपड़े पहने हैं, उसके पास स्लेट-पेंसिल है, उसने खाना खा लिया है; यह सब देखना पालकों का दायित्व है। एक बार जब यह आदत में शामिल हो जाए तो पूरे समुदाय के बच्चों में एक समय पर स्कूल जाने वाला ग्रुप बन जाता है। फिर कोई बच्चा स्कूल से भागता है तो उस पर निगाह रखना तथा सही रास्ते पर लाना आसान हो जाता है। जब प्रायः सभी बच्चे स्कूल जाने लगते हैं तो वे बच्चे जो स्कूल नहीं जा रहे हैं उन्हें भी स्कूल जाने वाले समूह में शामिल होने की इच्छा होने लगती है।

अब तो कुछ गांवों में पालक स्कूल समय पर न खुलने पर पूछताछ करने लगे हैं। पालकों की इस तरह की भागेदारी हौसला बढ़ाने वाली है।

प्रभाकर पोड़ापाटी: केसला तहसील (ज़िला होशंगाबाद) में 'सहमत संस्था' में कार्यरत हैं। *सहमत* आदिवासी बहुल क्षेत्र में शिक्षा के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ाने का काम कर रही है।
मूल लेख अंग्रेज़ी में। **अनुवाद: रजनीकांत शर्मा:** होशंगाबाद निवासी, साहित्य से लगाव तथा शौकिया अनुवादक।